तटस्थ प्रशस्ति संख्या 2023/डीएचसी/000397

दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

सुरक्षित :11.11.2022
उद्घोषित:18.01.2023

रि.या.(सि)4852/2014, सि.वि.आ.36197/2019, सि.वि.आ.53859/2019,

सि.वि.आ.53860/2019

स्नेह अग्रवाल .....याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री भरत गुप्ता, श्री वरुण त्यागी, श्री युगल चौधरी और श्री विशेष चौहान, अधिवक्तागण |

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक .....प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री रजत अरोड़ा, श्री नीरज कुमार और श्री दीपू कुमार झा, अधिवक्तागण ।

तटस्थ प्रशस्ति संख्या 2023/डीएचसी/000397

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार शर्मा

<u>निर्णय</u>

<u>दिनेश कुमार शर्मा, न्या:</u>

<u>प्रस्तावना</u>

1. वर्तमान रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई है, जिसमें निम्नलिखित राहत की मांग की गई हैः-

> *(i) केंद्र सरकार के औद्योगिक अधिकरण संख्या 1 से 2013 के एल.डी. 108 संख्या के मामले के अभिलेख मंगाए जाए |*
>
> *(ii) केंद्र सरकार के औद्योगिक अधिकरण संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 30.12.2013 के अधिनिर्णय को रद्द करने के रिट, आदेश या निर्देश ज़ारी किये जाये|*
>
> *(iii) सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण संख्या 1 द्वारा 30.12.2013 को आदेश और निर्देश को रदद् करते हुए रिट जारी करना|*
>
> *(iii) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करे जिससे अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ जारी किया गया दिनांक 08/11. 08-1995 को बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त किया जा सके। परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को वापस मज़दूरी,*

पदोन्नति, वरिष्ठता, पारिणामिक लाभ आदिके साथ बहाली के लिए भी याचिकाकर्ता के दावे की अनुमति दी जाए|

2. याचिकाकर्ता/कामगार ने सीजीआईटी सह श्रम न्यायालय-1, कड़कड़डूमा न्यायालय परिसर दिल्ली द्वारा पारित दिनांक 30.12.2013 आई.डी. संख्या 108/2013 शीर्षक "श्रीमती स्नेह अग्रवाल बनाम सीएमडी, पंजाब नेशनल बैंक "के अधिनिर्णय का खंडन किया है, " जिसके द्वारा याची/कामगार के पुनर्नियुक्ति बहाली के दावे को खारिज कर दिया गया|

<u>मामले की पृष्ठभूमि</u>

3. संक्षिप्त रूप से वर्णित तथ्य, जैसा कि याचिका में अभिकथित किया गया है, ये हैं कि याची/कामगार को प्रत्यर्थी-बैंक के साथ दिनांक 15.09.1978 को क्लर्क-सह-कैशियर के रूप में नियुक्त किया गया था और लगातार 13 वर्षों तक सेवा प्रदान की गई थी| यह प्रकथन किया गया है कि जब वह नई दिल्ली स्थित शाखा कार्यालय पार्लियामेंट स्ट्रीट में एक उन्नत स्तर की पंचिंग मशीन ऑपरेटर के रूप में पदस्थापित थीं, तब श्री पी. एस. बेदी, तत्कालीन शाखा प्रबंधक, कालीरामपुर शाखा, मेरठ ने उनसे संपर्क किया और उनसे अपनी शाखा में जमा के लक्ष्य को पूरा करने के लिए कुछ जमा करने का अनुरोध किया। यह ध्यान देने योग्य है कि शाखा कार्यालय, संसद मार्ग, नई दिल्ली में अपनी तैनाती से पहले, याचिकाकर्ता/कामगार श्री पी. एस. बेदी के समग्र प्रभार के तहत तिलक नगर शाखा, नई दिल्ली में काम

कर रहे थे| याचिकाकर्ता/कामगार ने श्री पी. एस. बेदी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और उन्हें एफडीआर जारी करने के लिए एक आवेदन पत्र के साथ क्रमशः 15.11.1990 और 21.11.1990 को 50,000 रुपये और 10,000 रुपये दिए।

4. याची/कामगार द्वारा यह प्रकथन किया गया है कि दिनांक 02.02.1991 को, एफडीआर सं. 20/91 उसे सौंप दी गई थी, जिसके बाद उसने कथित एफडीआर को गिरवी रखते हुए संसद मार्ग शाखा में मांग ऋण के लिए आवेदन किया| हालांकि, बाद में, बैंक द्वारा यह पता चला कि यधपि यह एफडीआर कथित एफडीआर था| जो 2 फरवरी, 1991 को 60,000/- रुपये की राशि के लिए जारी किए गए थे, केवल 6,000/- रुपये की राशि 03.02.1991 को बैंक में जमा की गई थी।

5. केंद्रीय जांच ब्यूरो में एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया था और याचिकाकर्ता/कामगार को दिनांक 30.01.1992 के पत्र द्वारा निलंबित कर दिया गया था।इसके बाद, याचिकाकर्ता/कामगार के खिलाफ एक विभागीय जांच शुरू की गई और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा 07.02.1994 को उनके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया| उनके खिलाफ लगाए गए आरोप नीचे दिए गए हैं:

> *"आपने एक कर्मचारी सदस्य के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करते हुए धोखाधड़ी की, जो कि बैंक के हितों के लिए प्रतिफूल पूर्ण कार्य है, जो पैरा 19.5 (ठ) के संदर्भ में एक कदाचार है।*

6. याची/कामगार ने आरोपों से इंकार करते हुए अपना जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन यह संतोषजनक नहीं पाया गया और याचिकाकर्ता/कामगार के खिलाफ लगाए गए आरोपों की विस्तृत जांच करने के लिए एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया।

7. प्रत्यर्थी/बैंक ने दो गवाहों प्रदीप कुमार अग्रवाल, जो उस समय कलिरामपुर शाखा में विशेष सहायक के रूप में तैनात थे, और श्री बाबू लाल गुप्ता, जो उस समय संसद मार्ग, शाखा में ऋण के प्रभारी थे से जिरह की | याचिकाकर्ता/कामगार ने श्री पी. एस. बेदी नामक एक गवाह को भी पेश किया।

8. जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट दिनांक 14.03.1995 को प्रस्तुत की और आरोप को संदेह से परे साबित और स्थापित माना। अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की और याचिकाकर्ता/कामगार को सुनवाई/सुनने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने दिनांक 08.08.1995 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्तगी का दंड दिया| यह उल्लेख करना उचित है कि याची/कामगार द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश के खिलाफ दायर की गई अपील को भी खारिज कर दिया गया था|

9. याचिकाकर्ता/कामगार ने इसके बाद एक औद्योगिक विवाद उठाया | चूंकि सुलह की कार्यवाही सफल नहीं हुई, इसलिए यह मामला दिनांक 30.09.1997 के आदेश द्वारा विद्वान औद्योगिक अधिकरण के पास भेज दिया।

10. केंद्र सरकार, श्रम मंत्रालय ने दिनांक 30.09.1997 के आदेश द्वारा निम्नलिखित विवाद को अधिनिर्णय के लिए विद्वत अधिकरण को निर्दिष्ट किया|:

> *"क्या दिनांक 11.8.95 से स्नेहलता अग्रवाल क्लर्क-कम-कैशियर की सेवा को बर्खास्त करने में पीएनबी के प्रबंधन की कार्रवाई न्यायसंगत और उचित है?यदि नहीं, तो कामगार किस राहत का हकदार है?"*

11. यह ध्यान देने योग्य है कि भारत सरकार, श्रम मंत्रालय द्वारा एक शुद्धिपत्र जारी किया गया था कि अनुसूची की पंक्ति 3 में कामगार का नाम स्नेहलता अग्रवाल के स्थान पर स्नेह अग्रवाल के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

12. याचिकाकर्ता/कामगार ने प्रत्यर्थी/बैंक के खिलाफ एक दावे का बयान दायर किया कि वह प्रत्यर्थी/बैंक को पूर्ण वेतन और सेवा में निरंतरता और अन्य पारिणामिक लाभों के साथ उसे सेवा में वापस लाने का निर्देश दे।

13. अभिवचनों के पूरा होने के बाद, विद्वत अधिकरण ने 26.02.1998 को मुद्दे तैयार किए जो इस प्रकार है"

> *"(i) क्या कामगार के विरुद्ध की गई घरेलू जांच निष्पक्ष और उचित है?*
>
> *(ii)संदर्भ की शर्तों के अनुसार।*

14. पक्षकारों को सुनने के बाद, विद्वत अधिकरण ने दिनांक 10.08.2011 का एक अधिनिर्णय पारित किया जिसमें बैंक द्वारा की गई जांच नहीं की गई थी। न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित नहीं माना गया। विद्वत अधिकरण ने प्रत्यर्थी/बैंक को याची/कामगार को पूर्ण वेतन और सभी पारिणामिक लाभों जैसे वरिष्ठता और पदोन्नति आदि के साथ बहाल करने का निर्देश दिया|

15. प्रत्यर्थी/बैंक ने रि.या.(सि) 9083.2011 वाली एक रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 10.08.2011 के अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए की। इस न्यायालय ने दिनांक 17.04.2013 के आदेश द्वारा 10.08.2011 के अधिनिर्णय को रद्द कर दिया और यह मामला अधिकरण को वापस भेज दिया गया ताकि प्रत्यर्थी/बैंक को अपने साक्ष्य का नेतृत्व करने का अवसर प्रदान किया जा सके और याचिकाकर्ता/कामगार को इसका खंडन करने और याचिकाकर्ता/कामगार के विरुद्ध आरोप की स्थापना के पहलू पर प्रस्तुतियां देने का अधिकार हो | इस न्यायालय ने अधिकरण को 10.08.2011 के अधिनिर्णय में की गई टिप्पणियों से प्रभावित हुए बिना आगे के साक्ष्य के आधार पर एक नया अधिनिर्णय पारित करने का निर्देश दिया।

16. इस न्यायालय के दिनांक 17.04.2013 के आदेश के अनुसरण में, याची/कामगार के कदाचार को साबित करने के लिए अपने साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए विद्वत अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी/बैंक को बुलाया विद्वान था| सुश्री रिमी रे और

श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल की प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा जांच की गई और याचिकाकर्ता/कामगार ने रिकॉर्ड किए गए बयानों का खंडन करने के लिए अपनी जांच की| उन्होंने किसी अन्य गवाह से पूछताछ न करने का विकल्प चुना।

17. विद्वान अधिकरण अन्य बातों के साथ साथ बातों के साथ-साथ यह भी माना कि विद्वत जांच कार्यालय द्वारा की गई जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप थी। विद्वान अधिकरण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया विद्वान कि प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा की गई जांच निष्पक्ष और उचित थी| आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी/बैंक, संदेह से परे, याची/कामगार के कदाचार को साबित करने में समर्थ, योग्य था, जो एक आरोप है जो गंभीर प्रकृति का है | यह अभिनिर्धारित किया गया कि याची/कामगार प्रत्यर्थी/बैंक के हित के विरुद्ध कार्य कर रहा था और सेवा से बर्खास्तगी की सजा को उचित मान गया था। याचिकाकर्ता/कामगार के दावे को खारिज कर दिया गया| दिनांक 30.12.2013 के कथित अधिनिर्णय से व्यथित होने के कारण, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है|

<u>याचिकाकर्ता/कामगार के तर्क</u>

18. शुरुआत में, याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश को खारिज किया जा सकता है क्योंकि यह संदर्भ की शर्तों के दायरे से परे था| यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय के दिनांक 17.04.2014 के आदेश के अनुसार, विद्वान अधिकरण के पास घरेलू जांच की निष्पक्षता के मुद्दे से

निपटने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि इसका पहले ही अंतिम रूप से निर्णय हो चुका था| उसने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी/बैंक ने घरेलू जांच की निष्पक्षता के पहलू पर अधिकरण के निष्कर्ष को चुनौती देने वाले 18.08.2011 दिनांकित पिछले अधिनिर्णय का खंडन नहीं किया था, बल्कि उसने याची/कामगार के विरुद्ध आरोप स्थापित करने के लिए अधिकरण के समक्ष केवल साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया था|

19. याची/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिकरण के निष्कर्ष विकृत और विरोधाभासी हैं, अनुमान और अप्रासंगिक सामग्री पर आधारित हैं और इस न्यायालय द्वारा अपनी रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में इसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है| इस न्यायालय के ***श्री संतोष सुर बनाम भारत संघ व अन्य*** शीर्षक वाली रि.या.(सि) सं. 995/199 में दिनांक 03.06.2010 के आदेश व ***भारत संघ बनाम प्रेम खन्ना*** शीर्षक वाली आप.अ. सं. 546/2003 में दिनांक 21.11.2005 के आदेश का अवलंब लिया गया है।

20. उसने प्रस्तुत किया है कि विद्वान अधिकरण ने अपने समक्ष पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की सराहना नहीं की, बल्कि उसने जांच अधिकारी के समक्ष पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की सराहना की जो इस न्यायालय के निर्देशों के विपरीत है। यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान अधिकरण ने श्री बेदी के बयान कि एफडीआर को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता/कामगार के दावे को अस्वीकार कर

दिया| यह 6,000/- रुपये के लिए था और 60,000/- रुपये तक बढ़ गया था। याची/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान अधिकरण द्वारा जिस बयान पर भरोसा किया गया था, वह जांच अधिकारी के समक्ष दर्ज किया गया था, न कि स्वयं न्यायाधिकरण के समक्ष। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि श्री बेदी ने कई मामलों में प्रतिवादी/बैंक को धोखा दिया था, इसलिए उनके बयानों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए था| उन्होंने यह भी कहा कि श्री बेदी द्वारा 5,622.80 रुपये से लेकर 66,228 रुपये तक के कथित परिपक्वता मूल्य में हेरफेर करना व्यावहारिक रूप से असंभव है क्योंकि परिपक्वता मूल्य को दशमलव के रूप में पढ़ा जाएगा जिसे शून्य के रूप में भी देखा जाना है और मिटाना होगा। हालांकि, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि एफडीआर पर कोई कटौती या ओवरराइटिंग नहीं की गई थी, इसलिए श्री बेदी के इस बयान को झूठा ठहराया गया है। याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि श्री बेदी ने कहा था कि ऋण की राशि उनके द्वारा ली गई थी, जो कि एक बार फिर से एक झूठा बयान है, जैसा कि प्रत्यर्थी/बैंक ने स्वयं आरोप पत्र दिनांक 07.02.1994 में 35,938.10/- की राशि का उपयोग डिमांड लोन खाता संख्या 73/25 और रु. 1000/- को डीएल खाता संख्या 74/25 में समायोजित करने के लिए किया था।

21. याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि विद्वत अधिकरण ने यह विचार करते हुए गलती की कि 74 दिनों के बाद एफडीआर

जारी करने के बारे में कोई शोर नहीं था| उसने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता/कामगार ने अपने प्रतिपरिक्षण के दौरान स्पष्ट रूप से कहा था कि वह एफडीआर की मांग कर रही थी, लेकिन चूंकि श्री बेदी एक वरिष्ठ अधिकारी थे, इसलिए वह उनके खिलाफ कोई कदम नहीं उठा सकती थी|

22. यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वत अधिकरण ने बही खाता पर भरोसा किया है जो दर्शाता है कि एफडीआर संख्या 20/91 के मुकाबले केवल 6,000/- रुपये की राशि जमा की गई थी।याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि बही-खातों में हेरफेर किया गया था और वे सही तस्वीर नहीं दिखाते हैं| इस न्यायालय का ध्यान श्री प्रदीप अग्रवाल की प्रतिपरीक्षा की ओर आकर्षित किया गया है, जिन्होंने कालीरामपुर शाखा में तैनात रहते हुए प्रश्नगत एफडीआर तैयार किया था। उन्होंने स्वीकार किया कि बैंक की कल्लीरामपुर शाखा में बही-खाता सहित दस्तावेजों में गड़बड़ी और हेरफेर की गई थी। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि श्री पी एस बेदी, प्रदीप कुमार अग्रवाल और यशपाल सिंह ने सीबीआई और पुलिस की रिपोर्टों के अनुसार 30 एफडीआर जारी किए और प्रत्यर्थी/बैंक से 65 लाख रुपये से अधिक की धोखाधड़ी की, लेकिन सीबीआई द्वारा याचिकाकर्ता/कामगार के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया था, जिसका अर्थ है कि उसे एक क्लीन चिट दी गई थी, इसलिए, उसने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी/बैंक भी उसके खिलाफ आरोप-पत्र दायर नहीं कर सकता था|

23. इस तर्क की पुष्टि करने के लिए कि प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा एफडीआर के लिए कथित रूप से 6,000/- रुपये की राशि भी जमा नहीं की गई थी, याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष कैशियर की लॉन्ग बुक और उस दिन, जब एफडीआर जारी किया गया था अर्थात 02.02.1991, की कैशबुक का वर्णन किया है।

24. याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि सबसे अच्छा साक्ष्य प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा रोक लिया गया था, लेकिन विद्वत अधिकरण साक्ष्य अधिनियम की खंड 114 (छ) के अनुसार एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में विफल रहा| उसने प्रस्तुत किया कि 30.01.2020 और 15.05.2019 के आदेशों के बावजूद प्रत्यर्थी/बैंक ने एफडीआर से संबंधित मूल रिकॉर्ड प्रस्तुत नहीं किया| प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा रोके गए दस्तावेज ग्राहक के पक्ष में कोई सावधि जमा खोलने के रिकॉर्ड के साथ-साथ ग्राहक के नाम सावधि जमा खोलने के लिए प्राप्त नकदी को बनाए रखने से संबंधित हैं| एफडीआर का काउंटर फॉयल निश्चित रूप से एफडीआर पर परिकलित और लिखित फेस वैल्यू परिपक्वता मूल्य को दर्शाता है| एफडीआर रजिस्टर दर्शाता है कि किसी निश्चित मूल्य का एफडीआर किसी विशेष दिन पर, किसी विशेष शाखा द्वारा जारी किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि ये दस्तावेज प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा प्रस्तुत किए गए थे, तो यह देखा जा सकता था कि किसी ने भी एफडीआर की राशि में कोई मुद्रास्फीति/परिवर्तन नहीं किया था और यह

कि 02.02.1991 दिनांकित एफडीआर याचिकाकर्ता/कामगार को रु. 66228/- के परिपक्वता मूल्य के साथ रु. 60,000/- के लिए सौंप दिया गया था|

25. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि यह ध्यान देने के बावजूद कि ग्रहणाधिकार को चिह्नित करने वाला पत्र विवादित नहीं था, अधिकरण ने स्वयं यह निष्कर्ष निकाला कि ग्रहणाधिकार का पत्र जाली था| इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी/बैंक का यह कर्तव्य था कि वह एफडीआर के संबंध में सभी दस्तावेज प्रस्तुत करे और उस पर ग्रहणाधिकार चिन्हित करे, लेकिन पत्र को बैंक द्वारा छिपाया गया और उसकी एक प्रति याची/कामगार द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई| ***शेर बहादुर बनाम यूओआई*** एमएएनयू/एससी/0682/2022, ***दिल्ली क्लॉथ जनरल मिल्स बनाम लुध बुध सिंह*** एमएएनयू/एससी/0423/1972 और ***रूम सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक*** एमएएनयू/एससी/8456/2008 याची/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह एक निर्विवाद तथ्य है कि कथित दस्तावेज़ सीबीआई द्वारा प्रत्यर्थी/बैंक की संसद मार्ग शाखा के कब्जे से जब्त किया गया था| इसके अलावा, श्री प्रदीप अग्रवाल और श्री पी एस बेदी ने जांच अधिकारी के समक्ष अपने प्रति प्रतिपरिक्षण के दौरान स्वीकार किया कि एफडीआर का अंकित मूल्य 60,000/- रुपये था और उक्त दस्तावेज पर उनके हस्ताक्षर थे।

26. याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह कानून का एक सुस्थापित प्रस्ताव है कि षड्यंत्र का श्रेय एक व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता

है और यह कि एक से अधिक व्यक्ति होने चाहिए। हालांकि, वर्तमान मामले में, उसने प्रस्तुत किया कि वर्तमान याची/कामगार के अलावा किसी को भी प्रश्नगत एफडीआर के संबंध में आरोपित और खारिज नहीं किया गया था| उन्होंने स्व. श्री बेदी और श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल के खिलाफ एफडीआर से जुड़े किसी भी षड्यंत्र के लिए कभी आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया और न ही उन्हें दंडित किया गया।उन्होंने अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए श्री बेदी और श्री प्रदीप कुमार अग्रवाल की बर्खास्तगी के आदेश पर भरोसा किया है।

27. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि एफडीआर कलिरामपुर शाखा, मेरठ द्वारा जारी किया गया था और ऋण संसद मार्ग शाखा, दिल्ली के ऋण विभाग द्वारा स्वीकृत किया गया था।याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा दो शाखाओं में से किसी भी शाखा में या तो जारी करने या ऋण मंजूरी से संबंधित कोई दस्तावेज तैयार नहीं किया गया था क्योंकि वह पीएस शाखा दिल्ली में रोकड़िया; खंजाची प्रमुख खजांची के रूप में काम कर रही थी| याची/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत विद्वान है कि प्रत्यर्थी/बैंक ने याची/कामगार पर संलिप्त होने और कदाचार करने का आरोप लगाया, लेकिन संसद मार्ग शाखा दिल्ली या कालीरामपुर शाखा में विभाग में काम कर रहे कर्मचारियों के खिलाफ कोई जांच शुरू नहीं की|

28. याचिकाकर्ता/कामगार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता/कामगार ने बैंक से अपने मूल एफडीआर की वापसी के लिए उपभोक्ता

फोरम के समक्ष एक मामला भी दायर किया है, जिसमें, दिनांक 23.11.2015 के आदेश के अनुसार, प्रत्यर्थी/बैंक को 50,000/- रुपये के मुआवजे और 10,000/- रुपये के मुकदमेबाजी लागत के साथ याचिकाकर्ता/कामगार को एफडीआर वापस करने का निर्देश दिया गया था| उक्त आदेश को प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा राज्य आयोग के समक्ष चुनौती दी गई है, जो लंबित है|

<u>प्रत्यर्थी/बैंक के तर्क</u>

29. प्रत्यर्थी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि विद्वान अधिकरण द्वारा गवाहों और पक्षकारों द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों की विस्तृत जांच के बाद 30.12.2013 दिनांकित आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया गया है और यह न्यायालय रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय परेशान नहीं कर सकता है । ***तथ्य के निष्कर्ष। कलकत्ता पोर्ट श्रमिक पर रिलायंस रखा गया है*** यूनियन वी कलकत्ता रिवर ट्रांसपोर्ट एसोसिएशन 1989 आई एलएलएन 1 और ***मध्यानटकैती सहकारी चीनी मिल वी एस विश्वनाथन एआईआर*** 2005 बी. एससी. 1954।

30. उसने प्रस्तुत किया कि एफडीआर बनाने के पहले याचिकाकर्ता/कामगार के खिलाफ आरोप दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ मौखिक साक्ष्य और परिस्थितिजन्य साक्ष्य और एफडीआर के बाद एवं एफ डी आर बनाने के बाद याचिकाकर्ता/कामगार के आचरण आधारित थे |

31. उन्होंने कहा है कि कोई भी सामान्य व्यक्ति इसके लिए भुगतान करने के तुरंत बाद बैंक से अपने एफडीआर की उम्मीद करेगा। हालांकि, वर्तमान में, यह याचिकाकर्ता/कामगार का मामला है कि उसने नवंबर 1990 में श्री बेदी को पैसे दिए थे, लेकिन फरवरी 1991 में लगभग तीन महीने की देरी के बाद एफडीआर उसके पास आया| इसका कोई कारण नहीं है कि क्यों एफडीआर सौंपने में देरी के कारण याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा कोई कदम क्यों नहीं उठाया गया| उसने आगे प्रस्तुत किया है कि ओडी खाते पर ब्याज की दर 11% है जबकि एफडीआर राशि पर ब्याज की दर 10% है| उसने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता/कामगार ने धन निकाला और ब्याज की एक उच्च दर का भुगतान किया और उसे एफडीआर में कम ब्याज दर के साथ निवेश किया जो अविश्वसनीय है और किसी भी तर्कसंगत व्यक्ति, विशेष रूप से एक बैंकर की ओर से सामान्य व्यवहार नहीं है|

32. प्रत्यर्थी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि याची/कामगार का आचरण संदिग्ध था क्योंकि जब याची/कामगार द्वारा एफडीआर प्राप्त किया गया था, तो उसके द्वारा कथित बढ़े हुए एफडीआर पर एक मांग ऋण उठाया गया था और दो अन्य मांग ऋणों का निपटान कथित ऋण राशि के आगमों से किया गया था| इतना ही नहीं, जब जनवरी 1992 में FDR परिपक्व होने वाला था, तो FDR का पूरा भुगतान किया गया था।

33. अंत में, प्रत्यर्थी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी/बैंक एक राष्ट्रीयकृत बैंक है और उसे नियमों, और विनियमों के अनुसार कार्य करना होता है और कर्मचारी की ओर से धोखाधड़ी वाले आचरण को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है| उसने प्रस्तुत किया कि दावेदार को दी गई सजा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की गंभीरता के अनुरूप है और साबित की गई है और इसलिए, विदवान न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय को बरकरार रखा जाए|

<u>निष्कर्ष और विश्लेषण</u>

34. मैंने पक्षकारों की प्रस्तुतियों को सुना है और अभिलेख पर सामग्री का अवलोकन किया है। प्रारंभ में, एक आक्षेपित आदेश की जांच और न्यायनिर्णयन करते समय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत रिट अधिकार क्षेत्र के दायरे की रूपरेखा तैयार करना प्रासंगिक है।

35. यह अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है कि 226 और 227 के तहत प्रदत्त शक्तियों का, भले ही वे विशाल हों, उपयोग बहुत कम और बड़ी सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए।एक आक्षेपित आदेश पर न्यायनिर्णयन करते समय, रिट अधिकार क्षेत्र का दायरा उस आदेश की अंतर्वस्तु की जांच तक सीमित कर दिया जाता है जो न्यायालय के समक्ष है। साक्ष्य और तथ्यों के प्रश्न सहित, आक्षेपित आदेश के मूल्यांकन से परे कोई भी विचार अधिकार क्षेत्र को पार करने के बराबर होगा| यह उच्च न्यायालय के लिए नहीं है कि वह सामान्य सिविल विवादों से

गुणात्मक रूप से भिन्न प्रकार के विवादों को हल करने के लिए विशेष कानूनों के तहत गठित अधिकरणों पर अपील न्यायालय के रुप में स्वयं को गठित करे और उनके द्वारा तय किए गए तथ्यों के प्रश्नों पर पुनर्निर्णय करें। ***साधु राम बनाम दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन*** (1983) 4 एससीसी 156 और ***संजय कुमार झा बनाम प्रकाश चंद्र चौधरी,*** (2019)2 एससीसी 499 का अवलंब लिया गया है।

36. 1947 का औद्योगिक विवाद अधिनियम सामाजिक कल्याण और लाभकारी कानून का एक भाग है। 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम ने श्रम न्यायालयों/अधिकरणों को अपने समक्ष प्रस्तुत औद्योगिक विवादों के निर्धारण में समुचित अधिनिर्णय देने के लिए व्यापक शक्तियां और अधिकार क्षेत्र प्रदान की है। श्रम न्यायालयों/न्यायाधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय में न्यायनिर्णायक सामाजिक न्याय के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए प्रबंधन पर नई बाध्यताएं अधिरोपित कर सकता है ताकि सामाजिक न्याय के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए और न्यायाधीश्मकार के बीच अतिशेष; संतुलन स्थापित किया जा सके और शांति और सद्भाव सुनिश्चित किया जा सके। **भारत बैंक लिमिटेड बनाम भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली के कर्मचारी,** एआईआर 1950 एससी 188 और बीड़ी, बीड़ी लीव्स बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1962 एससी 4 का अवलंब लिया जा सकता है।

37. विधायिका ने अपने विवेक से श्रम न्यायालय/औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील का उपबंध नहीं किया है और इस प्रकार श्रम

न्यायालय/औद्योगिक अधिकरण को तथ्यों का अंतिम न्याय निर्णायक बनाया है।यह एक स्थापित प्रस्ताव है कि श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय को केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब रिकॉर्ड में कोई त्रुटि दिखाई देती है| उच्च न्यायालयों के लिए अपनी रिट अधिकार क्षेत्र के तहत साक्ष्यों की फिर से समीक्षा करना और अपने दृष्टिकोण को श्रम न्यायालय/अधिकरणों के साथ प्रतिस्थापित करना अनुज्ञेय नहीं है। उच्च न्यायालय को तथ्यों के उन शुद्ध प्रश्नों पर फिर से विचार करने से बचना चाहिए, जिनका निर्णय पहले ही अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय/न्यायाधिकरणों द्वारा किया जा चुका है, जब तक कि वे विकृत, स्पष्ट रूप से अवैध, कानून के विपरीत नहीं पाए जाते हैं, या यदि अभिलेख में कोई त्रुटि दिखाई देती है। इस संबंध में, मदुरांतकम को-ऑपरेटिव शुगर मिल्लस लिमिटेड का प्रबंधन बनाम एस. विस्वनाथन (2005) 3 एससीसी 193, इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम आई.ओ.बी. सौराष्ट्र राज्य (1957) एससीआर पर अवलंब किया जा सकता है |

38. रिट न्यायालय को कारण अभिलिखित करने चाहिए यदि वह तथ्यों के निष्कर्ष पर पुनर्विचार करना चाहता है। रिट न्यायालयों को बार-बार वास्तविक विवादों और उन पर दिए गए निष्कर्षों के दायरे में प्रवेश न करने के लिए आगाह किया गया है। हरियाणा राज्य बनाम देवी दत्त और अन्य: (2006) 13 एससीसी 32 पर अवलंब किया जा सकता है | शीर्ष न्यायालय ने अन्य बातों के साथ साथ बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि रिट न्यायालय तथ्यों के तथ्यात्मक निष्कर्षों में तभी

हस्तक्षेप कर सकता है जब (1) अधिनिर्णय तर्कविरुद्ध है, (2) श्रम न्यायालय ने गलत कानूनी सिद्धांतों को लागू किया है, (3) श्रम न्यायालय ने गलत प्रश्न खड़े किए हैं, (4) श्रम न्यायालय ने प्रासंगिक तथ्यों पर विचार नहीं किया है, (5) श्रम न्यायालय अप्रासंगिक तथ्यों पर या बाहरी विचार के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचा है |

39. चंदावरकर सीता रत्न राव बनाम आशालता एस. गुरम (1986) 4 एस. सी. सी. 447 मामले में अन्य बातों के साथ साथ यह अभिनिर्धारित किया कि रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उच्च न्यायालय, यदि न्याय की आवश्यकता है, तो प्रश्नगत तथ्यों पर विचार कर सकता है या साक्ष्य पर विचार कर सकता है। किंतु जहां प्रश्न साक्ष्य के मूल्यांकन पर निर्भर करता है, वहां उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत स्पष्ट कारणों की अनुपस्थिति में, तथ्यों की जांच करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इंकार कर देना चाहिए उच्च न्यायालय के अधिकरण या न्यायालय की अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, सिवाय उस स्थिति के जब निष्कर्ष विधि में विकृत हो, इस अर्थ में कि विधि में समुचित रूप से निर्देश कोई युक्तियुक्त व्यक्ति इस प्रकार का निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है या विधि में गलत दिशा नहीं है या तथ्य के बारे में राय साक्ष्य की प्रधानता के आधार पर नहीं ली गई है या निष्कर्ष

किसी भी तात्विक साक्ष्य पर आधारित नहीं है या इसके परिणामस्वरूप स्पष्ट अन्याय हुआ है।

40. भारत संघ बनाम पी. गुणशेखरन, (2015) 2 एस.सी.सी.610 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय में रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की सीमा के बारे में विस्तार से बताया गया और अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गयाः-

> *"13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय निम्नलिखित नहीं करेगाः*
>
> *(i) साक्ष्य की पुनः सराहना करना|*
>
> *(ii)यदि जांच विधि के अनुसार की गई है तो जांच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना|*
>
> *(iii)साक्ष्य की पर्याप्तता की जांच करना|*
>
> *(iv)साक्ष्य की विश्वसनीयता की जांच करना|*
>
> *(v)हस्तक्षेप करना, यदि कोई कानूनी साक्ष्य है जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं।*
>
> *(v) तथ्य की त्रुटि को ठीक करना, चाहे वह कितनी ही गंभीर प्रतीत हो|*

41 इस प्रकार, रिट अधिकार क्षेत्र में, उच्च न्यायालय श्रम न्यायालय/अधिकरण के अधिनिर्णय में हस्तक्षेप कर सकता है, यदि पेटेंट अवैध है या यदि दिया गया

अधिनिर्णय 'गलत सहानुभूति' के उपाय के रूप में कानून के विपरीत है और इस प्रकार से विकृत था।यदि विशेष विधान के अधीन अधिकरण को अधिकारिता संबंधी तथ्यों का विनिश्चय करने की शक्ति प्राप्त है तो उच्च न्यायालय ऐसे अधिकरणों द्वारा विनिश्चित तथ्यों के प्रश्न पर न्यायनिर्णयन नहीं कर सकता।

42. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह स्थिति प्राप्त की है कि यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका में साक्ष्य की संवीक्षा नहीं कर सकता है और याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा साक्ष्य पर आधारित चुनौती अमान्य है।इस आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारियों को चुनौती देने के लिए न्यायालय द्वारा विचार किए गए मानदंड अच्छी तरह से तय किए गए हैं। ***बम्बई उच्च न्यायालय बनाम शशिकांत एस. पाटिल*** (2001) 1 एस. सी. सी. 416 पर विश्वास किया जा सकता है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते समय विभागीय प्राधिकारियों के साथ हस्तक्षेप की अनुमति दी जा सकती है, यदि इस तरह के प्राधिकारी ने प्रकृति के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए या ऐसी जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक विनियमों का उल्लंघन करते हुए कार्यवाही की है या यदि ऐसा निर्णय प्राधिकारी मामले के साक्ष्य और गुणावगुण से बाहर के विचारों से विकृत होता है या यदि प्राधिकारी द्वारा उसके सामने किया गया निष्कर्ष पूरी तरह मनमाना या अस्थिर कि

कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था, या उपरोक्त के समान आधारित नहीं हैं।

43. ***भारत संघ बनाम पी. गुणशेखरन (2015) 2 एससीसी 610*** के मामले में, यह अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित रूप में आयोजित किया गयाः-

> "14. *आंध्र प्रदेश बनाम एस. श्री रामाराव (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1723) के मामले में शुरूआती निर्णयों में से एक में, उपरोक्त सिद्धांतों में से कई पर चर्चा की गई है और इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया है:(ए आई आर पीपी| 1726-27, पैरा 7)"*
>
> > *"7. किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच करने वाले प्राधिकारियों के विनिश्चय के विरुद्ध अपील न्यायालय के रूप में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही में उच्च न्यायालय गठित नहीं किया जाता है: यह निर्धारित करने से संबंधित है कि क्या जांच इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा और इस संबंध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जाता है। जहां कोई साक्ष्य है, जिसे जांच करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का युक्तियुक्त रूप से समर्थन कर सकता है कि अपराधी अधिकारी आरोप का अपचारी है, वहां अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका में उच्च न्यायालय का यह कार्य नहीं है कि वह साक्ष्य की समीक्षा करे और साक्ष्य पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे। उच्च*

न्यायालय निःसंदेह हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय प्राधिकारियों ने प्राकृतिक न्याय के नियमों से असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले सांविधिक नियमों का अपचारी हुए या जहां अधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से परे कुछ कारणों से निष्पक्ष निर्णय तक पहुंचने से खुद को अक्षम कर लिया है या खुद को अप्रासंगिक द्वारा प्रभावित होने दिया है "विचारणीय बातें या जहां निष्कर्ष सामने ही इतना अनुचित; अस्थिर और स्वेच्छापूर्ण है कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था, या इसी तरह के आधार पर। "किंतु विभागीय प्राधिकारी तथ्यों के एकमात्र न्यायाधीश हैं और यदि कोई ऐसा विधिक साक्ष्य है जिस पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता ऐसा मामला नहीं है जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की अनुमति दी जा सके।"

15. ए. पी. बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.चित्रा वेंकट राव [(1975) 2 एससीसी 557:1975 एससीसी (एल एंड एस) 349:ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2151) में सिद्धांतों पर आगे पैरा 21-24 में चर्चा की गई है, जो इस प्रकार हैः (एससीसी पृष्ठ 561-63)

"21. विभागीय जांच से निपटने में अनुच्छेद 226 का दायरा इस न्यायालय के समक्ष आया है। इस न्यायालय द्वारा ए.

पी. बनाम श्री एस.रामा राव-[ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1723]-आंध्र प्रदेश राज्य वाले मामले में दो प्रस्ताव रखे गए थे। पहला, इस विचार के लिए कोई वारंट नहीं है कि सार्वजनिक अधिकारी अपने खिलाफ लगाए गए कदाचार का दोषी है या नहीं, इस पर विचार करने में, आपराधिक मुकदमों में इस नियम का पालन किया जाता है कि कोई अपराध तब तक स्थापित नहीं किया जाता है जब तक कि न्यायालय की संतुष्टि के लिए उचित संदेह से परे साक्ष्य द्वारा साबित नहीं किया जाता है। यदि घरेलू जांच न्यायाधिकरण द्वारा उस नियम को लागू नहीं किया जाता है तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में विभागीय जांच करने वाले अधिकारियों के आदेश को अमान्य घोषित करने के लिए सक्षम नहीं है। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच करने के अधिकारियों के फैसले के खिलाफ अपील करने वाला न्यायालय नहीं है। न्यायालय यह अवधारित करने के लिए संबंधित है कि क्या जांच इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा और इस संबंध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है और क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जाता है। दूसरा, जहां कुछ साक्ष्य है जिसे जांच करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो साक्ष्य इस निष्कर्ष का युक्तियुक्त समर्थन कर सकता है कि अपराधी अधिकारी आरोप का अपचारी है, यह उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है

कि वह साक्ष्य का पुनर्विलोकन करे और साक्ष्य पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचे।उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय प्राधिकारियों ने प्राकृतिक न्याय के नियमों से असंगत तरीके से या जांच का तरीका विहित करने वाले सांविधिक नियमों का उल्लंघन करते हुए या जहां प्राधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से भिन्न कुछ विचारों द्वारा किसी निष्पक्ष निर्णय पर पहुंचने से स्वयं को अक्षम कर लिया है या अपने आप को असंगत विचारों से प्रभावित होने दिया है या जहां निष्कर्ष उसके सामने इतना अनुचित और चंचल; अस्थिर है कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था। विभागीय प्राधिकारी तथ्यों के एकमात्र न्यायाधीश हैं और यदि कोई ऐसा विधिक साक्ष्य है जिस पर उनके निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता ऐसा मामला नहीं है जिसे अनुच्छेद 226 के अधीन रिट के लिए कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने की अनुमति दी जा सके।

22. पुनः, यह न्यायालय रेलवे बोर्ड बनाम निरंजन सिंह [(1969) 1 एससीसी 502:(1969) 3 एससीआर 548] ने कहा कि उच्च न्यायालय अनुशासनिक प्राधिकारी के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करता है जब तक कि निष्कर्ष किसी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं होता है या यह कहा जा सकता है कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं

पहुंच सकता है। निरंजन सिंह मामले [(1969) 1 एससीसी 502:(1969) 3 एस. सी. आर. 548) में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय ने इस आरोप पर अनुशासनिक प्राधिकारी के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने में अपनी शक्तियों को पार किया कि 31-5-1956 को सुबह लगभग 8.15 पूर्वाहन पर कंप्रेसर को बंद करने में प्रत्यर्थी की अहम भूमिका थी। इस न्यायालय ने कहा कि जांच समिति ने महसूस किया कि दो व्यक्तियों के साक्ष्य कि प्रत्यर्थी ने हड़ताल करने वालों के एक समूह का नेतृत्व किया और उन्हें अपने कंप्रेसर को बंद करने के लिए मजबूर किया, को उसके वास्तविक मूल्य पर स्वीकार नहीं किया जा सकता है| महाप्रबंधक उस बिंदु पर महाप्रबंधक जांच समिति से सहमत नहीं थे। महाप्रबंधक ने साक्ष्य को स्वीकार कर लिया। इस न्यायालय ने कहा कि ऐसा करने के लिए महाप्रबंधक स्वतंत्र हैं और वह समिति द्वारा दिए गए निष्कर्ष से बंधे नहीं हैं। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष प्रभावी होना चाहिए और उच्च न्यायालय को निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था|

23. उत्प्रेषण रिट जारी करने का अधिकार अनुच्छेद 226 के अधीन आने वाला एक उत्प्रेष्ण की अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र है। न्यायालय इसका प्रयोग अपील न्यायालय के रूप में नहीं करता है। साक्ष्य के मूल्यांकन के परिणामस्वरूप किसी अवर न्यायालय या अधिकरण द्वारा

प्राप्त तथ्य के निष्कर्षों को न तो फिर से खोला जाता है और न ही रिट कार्यवाहियों में उन पर सवाल उठाया जाता है। कानून की एक त्रुटि जो अभिलेख पर स्पष्ट है, उसे रिट द्वारा सुधारा जा सकता है, लेकिन तथ्य की एक त्रुटि को नहीं, भले ही वह कितनी ही गंभीर प्रतीत हो। किसी अधिकरण द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, एक रिट जारी की जा सकती है यदि यह दिखाया जाता है कि उक्त निष्कर्ष को अभिलिखित करने में, अधिकरण ने गलती से स्वीकार्य और तात्विक साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, या गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार कर लिया था जिसने आक्षेपित निष्कर्ष को प्रभावित किया है। यदि तथ्य का निष्कर्ष बिना किसी उत्प्रेष्ण पर आधारित है, तो उसे कानून की त्रुटि माना जाएगा जिसे उत्प्रेषण की रिट द्वारा ठीक किया जा सकता है। अधिकरण द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत प्रासंगिक और तात्विक साक्ष्य किसी निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए अल्प या अपर्याप्त है| साक्ष्य की पर्याप्ता या प्रचुरता एक बिंदू पर आधारित है और उक्त निष्कर्ष से निकाले जाने वाले तथ्य अधिकरण की अनन्य अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत हैं। देखें सैयद याकूब बनाम के. एस. राधाकृष्णन [ए.(आई.आर. 1964 एससी 477)]

24. वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन किया और अपने निष्कर्ष पर पहुंचा। उच्च

न्यायालय का ऐसा करना न्यायोचित नहीं था। इस पहलू के अलावा कि उच्च न्यायालय इस आधार पर तथ्य के निष्कर्ष को सही नहीं करता है कि साक्ष्य प्रचूर या पर्याप्त नहीं है, वर्तमान मामले में साक्ष्य जिस पर अधिकरण द्वारा विचार किया गया था, उसे उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराने के लिए स्कैन नहीं किया जा सकता है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जो अधिकरण के इस निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराए कि प्रतिवादी ने यात्रा नहीं की। न्यायाधिकरण ने अपने निष्कर्षों के लिए कारण दिए। उच्च न्यायालय के लिए यह कहना संभव नहीं है कि कोई भी उचित व्यक्ति इन निष्कर्षों पर नहीं पहुंच सकता है।उच्च न्यायालय ने सबूतों की समीक्षा की, सबूतों का फिर से मूल्यांकन किया और फिर सबूतों को बिना किसी सबूत के खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय को जारी उत्प्रेषण रिट के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय ठीक यही नहीं करना चाहिए।"

44. उच्चतम न्यायालय ने सर्वपल्ली रमैया बनाम जिला कलेक्टर, **चित्तूर, (2019) 4 एससीसी 500 मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के दायरे की जांच करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की गईः-**

"41. इस मामले में, न्यायालय के आदेशों के अनुसरण में लिया गया आक्षेपित निर्णय कुछ सामग्रियों पर आधारित था।उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की असाधारण शक्ति के

प्रयोग में हस्तक्षेप की आवश्यकता को विकृत नहीं कहा जा सकता।किसी निर्णय को अतार्किकता से दूषित किया जाता है यदि निर्णय इतना अपमानजनक होता है कि यह सभी तर्कों की अवहेलना में होता है जब उचित रूप से कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री को ध्यान में रखते हुए संभवतः निर्णय नहीं ले सकता था| इस मामले में लिया गया फैसला तर्कहीन नहीं है।

42. किसी निर्णय को कभी-कभी अवैध होने के आधार पर अनुच्छेद 226 के अधीन अपास्त और अभिखंडित किया जा सकता है। यह तब होता है जब निर्णय के समक्ष कानून की स्पष्ट त्रुटि होती है, जो निर्णय की जड़ तक जाती है और/या दूसरे शब्दों में एक स्पष्ट त्रुटि होती है, लेकिन जिसके लिए निर्णय लिया गया होगा|

43. अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन विनिश्चय के विरुद्ध नहीं बल्कि निर्णय करने की प्रक्रिया के विरुद्ध निर्देशित है। निश्चित रूप से, पेटेंट अवैधता और/या निर्णय में स्पष्ट त्रुटि, निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है। इस मामले में ऐसी कोई पेटेंट अवैधता या स्पष्ट त्रुटि नहीं है। अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध अपील में नहीं बैठता और न ही वह तथ्यों के उग्र विवादित प्रश्नों का न्यायनिर्णयन करता है।"

45. इस प्रकार, पूर्वोक्त स्थिर कानून के आलोक में, यह सुनिश्चित करने के लिए आक्षेपित अधिनिर्णय की जांच करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या पारित

अधिनिर्णय में कोई दुर्बलता है जिसके लिए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है|

46. विद्वान अधिकरण ने अपने द्वारा विरचित मुद्दों पर प्रत्यर्थी/बैंक के पक्ष में न्यायनिर्णयन किया है| विद्वान अधिकरण ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि उसके समक्ष पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत मौखिक प्रस्तुतियों और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर कामगार की सेवाओं को विधिक और न्यायोचित रूप से समाप्त कर दिया गया है|

47. विद्वान अधिकरण ने तथ्यों की जांच की, जैसा कि श्री एस.सी. पी. सी. जैन, प्रबंधक (पूर्व एमडब्ल्यू1/1)श्री पी. सी. जैन ने अपने शपथ पत्र में गवाही दी कि पूछताछ की पहली तारीख पर, आरोप याचिकाकर्ता/कामगार को पढ़कर सुनाया गया, जिन्होंने सभी आरोपों का खंडन किया| इसके बाद बैंक द्वारा आरोपों की पुष्टि के लिए जिन दस्तावेजों और गवाहों पर भरोसा किया गया, उनकी एक सूची उन्हें दी गई।प्रतिपरीक्षा के दौरान, उसने इस तथ्य से इंकार किया कि उसे रक्षा सहायता के साथ-साथ साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर भी नहीं दिया गया था।

48. विद्वान अधिकरण ने याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा अपने शपथ पत्र (एक्स. डब्ल्यूडब्ल्यू1/1) में दिए गए तथ्यों की भी जांच की, जिसमें उसने बताया कि बैंक की कल्लीरामपुर शाखा के कामकाज में उनकी कोई भूमिका नहीं थी। उन्होंने कहा कि जांच अवैध तरीके से की गई और जांच अधिकारी को 27.10.1994 को अवैध

रूप से बदल दिया गया। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि इकबालिया बयान 29.01.2002 को दबाव में प्राप्त किया गया था। उन्होंने आगे दावा किया कि जांच अधिकारी ने श्री पी. एस. बेदी द्वारा दिए गए इकबालिया बयान को ध्यान में नहीं रखा और मूल एफडीआर, जिसे कथित तौर पर बढ़ी हुई दर के साथ बताया गया था, को जांच अधिकारी के समक्ष पेश नहीं किया गया।

49. इसके अलावा, विद्वान अधिकरण ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप थी, अधिकरण ने उसके समक्ष रिकॉर्ड में रखी जांच कार्यवाहियों की जांच की।

50. आरोपपत्र के सरल पठन से यह स्पष्ट होता है कि इसमें कोई अस्पष्टता नहीं थी।विद्वान अधिकरण द्वारा यह पाया गया कि 28.11.1994 दिनांकित कार्यवाहियों और श्री पी. सी. जैन के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि याची/कामगार जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए और उन्हें आरोप की विधिवत व्याख्या की गई| याचिकाकर्ता/कामगार को स्पष्ट रूप से बताया गया था कि वह द्विपक्षीय निपटान के प्रावधानों के संदर्भ में, एक रक्षा सहायक से सहायता लेने के लिए स्वतंत्र है|

51. जांच कार्यवाहियों के मात्र अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता/कामगार को अपना बचाव करने के लिए उचित और जिम्मेदार अवसर दिए गए थे| यह ध्यान देने योग्य है कि 01.02.1995 को जांच अधिकारी से

याचिकाकर्ता/कामगार के बचाव में श्री पी. एस. बेदी का बयान दर्ज करने का अनुरोध किया गया और जांच अधिकारी ने श्री पी. एस. बेदी का बयान दर्ज किया|

52. विद्वान अधिकरण ने याचिकाकर्ता/कामगार के इस तर्क पर भी विचार किया है कि कलिरामपुर शाखा, कैशियर की लंबी पुस्तक दिनांक 02.02.1991 को तैयार की गई एफडीआर संख्या 20/91 से संबंधित नकद पुस्तिका। 02.1991, एफडीआर रजिस्टर की फोटोकॉपी, एफडीआर के काउंटरफॉयल और एफडीआर नं. 20/91 से संबंधित एओएफ की प्रति उसे नहीं दी गई और दस्तावेजों की आपूर्ति नहीं होने के कारण उसे अपना बचाव करने की अनुमति नहीं दी गई। अधिकरण ने पाया कि उनके द्वारा 23 दिसंबर, 1994 को कलिरामपुर शाखा में इन दस्तावेजों का विधिवत निरीक्षण किया गया था। यह माना गया कि बैंकिंग व्यवसाय में प्रत्येक बैंक कर्मचारी द्वारा आत्यंतिक, स्पष्ट, पूर्ण, अंतिम निष्ठा, कर्मठता, सत्यनिष्ठा और ईमानदारी को संरक्षित करने की आवश्यकता है। यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो जनता/जमाकर्ताओं का विश्वास कम हो जाएगा। चूंकि दस्तावेजों के निरीक्षण को विधिवत मंजूरी दी गई थी, इसलिए यह नहीं माना जा सकता है कि उसे जांच रिपोर्ट/निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करने के कारण उसको कारित हुआ कोई पूर्वाग्रह पैदा हुआ था|

53. इसके अलावा, विद्वत अधिकरण ने पाया कि याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा मांगे गए दस्तावेजों से यह दर्शाना आवश्यक था कि प्रश्नगत एफडीआर 60,0000/- रुपये

की राशि के लिए जारी किया गया था, न कि 6,000/- रुपये की राशि के लिए हालांकि, कथित विवाद को श्री पी. एस. बेदी द्वारा उजागर किए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शांत किया जा सकता है, जिन पर याचिकाकर्ता/कामगार द्वारा पूरे दिल से भरोसा किया गया था| अपनी गवाही में, उन्होंने 6,000/- रुपये के लिए एफडीआर जारी करने और 60,000/- रुपये की राशि की मुद्रास्फीति को स्वीकार किया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि याचिकाकर्ता/कामगार ने जांच अधिकारी के समक्ष जो कुछ भी साक्ष्य दिया वह श्री बेदी द्वारा प्रकट किए गए साक्ष्य के विपरीत था|

54. विद्वान अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि जांच अधिकारी ने अपना निष्कर्ष अभिलिखित करते समय किसी भी तथ्य की उपेक्षा नहीं की। यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने याचिकाकर्ता/कामगार और श्री बेदी द्वारा पेश किए गए संस्करण की उपेक्षा की तदनुसार, यह निर्णय दिया गया कि बैंक द्वारा की गई जांच न्यायसंगत और उचित थी, जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष साक्ष्यों पर आधारित थे और उनकी रिपोर्ट को बिल्कुल भी विकृत नहीं किया जा सकता था।

55. विद्वान अधिकरण ने मामले सहित अनेक मामलों पर भरोसा किया इनमें फायरस्टोन टायर एंड रबर कंपनी (1973 (1) एलएलजे 278) और दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी (1972 (1) एलएलजे 180) के मामले शामिल हैं कि जब जांच निष्पक्ष और उचित पाई जाती है, तो अधिकरण को आरोप के गुण-दोष के आधार

पर बैंक के साथ-साथ कामगार द्वारा उसके समक्ष पेश किए गए साक्ष्य की सराहना करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। तथापि, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 17.04.2013 के आदेश में जारी किए गए निर्देशों को ध्यान में रखते, विद्वत अधिकरण ने अभिलेख पर दिए गए साक्ष्य की सराहना की और इस बारे में निष्कर्ष अभिलिखित किए कि क्या आरोप दावेदार के विरुद्ध साबित हुए थे या नहीं और क्या याची/कामगार की सेवाएं अवैध और अनुचित रूप से समाप्त की गई थीं|

56. विद्वत अधिकरण ने याची/कामगार द्वारा खंडन में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के साथ कदाचार को साबित करने के लिए प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा दिए गए साक्ष्य को स्कैन किया |

57. संक्षिप्तता की कीमत पर भी यह दोहराया जा सकता है कि उच्च न्यायालय केवल अधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है यदि यह अभिलेख पर प्रकट हो जाता है कि कर्मचारी के विरुद्ध कार्यवाहियां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप तरीके से संचालित की गई थीं। वर्तमान मामले में विद्वान अधिकरण ने, इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में, जांच करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन के मुद्दे की जांच की है|

यह भी एक स्थापित प्रस्ताव है कि यदि जांच उचित रूप से की जाती है तो विभागीय प्राधिकारी तथ्यों के एकमात्र निर्णायक हैं।कर्मचारी संविधान के अनुच्छेद

226 के तहत किसी कार्यवाही में पर्याप्तता या विश्वसनीयता के आधार पर निष्कर्षों को चुनौती नहीं दे सकता है।

58. रिट अधिकार क्षेत्र में उच्च न्यायालय साक्ष्य के स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए साक्ष्य की समीक्षा नहीं कर सकता है। इस प्रकार यह न्यायालय पुनः सबूतों की सराहना करते हैं। अतः वर्तमान कार्यवाहियों में साक्ष्य की चर्चा निरर्थक होगी। विशेष रूप से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता साक्ष्य के मूल्यांकन में किसी भी विकृति, अवैधता या कानून की त्रुटि को प्रदर्शित करने में समर्थ, योग्य नहीं है| साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के बाद न्यायाधिकरण द्वारा तथ्यों के निष्कर्ष को फिर से नहीं खोला जा सकता है या रिट कार्यवाहियों में सवाल नहीं उठाया जा सकता है|

59. आक्षेपित आदेश के साथ-साथ अभिलेख पर तथ्यों की जांच करने के बाद, यह स्पष्ट है कि याची/कामगार के खिलाफ आरोप प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा विधिवत साबित किए गए थे| विद्वान अधिकरण ने अपने समक्ष अभिलेख पर रखी गई सभी तथ्यों और साक्ष्यों पर विचार करने के बाद एक विस्तृत आदेश पारित किया है।

60. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता/कामगार ने केवल विवादित प्रश्नगत तथ्य उठाए हैं जिनकी जांच तथ्य-खोजी न्यायालय के रूप में विद्वान अधिकरण द्वारा की गई थी। अधिकरण और उससे पहले विभागीय प्राधिकारी अर्थात् अनुशासनिक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी सभी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता/कामगार ने

स्वयं दुर्व्यवहार किया और वह बैंक के रोजगार में रखे जाने के लिए एक विश्वसनीय व्यक्ति नहीं था| बैंकिंग व्यवसाय में आत्यंतिक, स्पष्ट, पूर्ण, अंतिम निष्ठा, सत्यनिष्ठा और ईमानदारी प्रत्येक बैंक कर्मचारी के लिए अनिवार्य है। इसके लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी अच्छा आचरण और अनुशासन बनाए रखें क्योंकि वे जमाकर्ताओं और ग्राहकों के धन के साथ व्यवहार करते हैं और यदि इसका पालन नहीं किया जाता है तो जनता/जमाकर्ताओं का विश्वास कम हो जाएगा। बैंकिंग प्रणाली भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। एक बैंक अधिकारी के रूप में अपनी ड्यूटी के दौरान वित्तीय अनियमितताओं में शामिल पाए जाने वाले अधिकारी को जांच रिपोर्ट में मामूली चूक होने पर भी नहीं छोड़ा जा सकता है। यह न्यायालय मानता है कि विद्वान अधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई तथ्य नहीं है|

<u>निष्कर्ष</u>

61. यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में कोई अशक्ता, विकृति, अवैधता, या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं पाती है और इस प्रकार विद्वान अधिकरण द्वारा लौटाए गए तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझती है, जिस हद तक अधिकरण ने याचिकाकर्ता को कदाचार के लिए दोषी ठहराया है। हालांकि, यह रिकॉर्ड की बात है कि याचिकाकर्ता ने 13 साल तक बैंक की सेवा की थी और इस अवधि के दौरान कोई शिकायत नहीं थी| यह भी एक रिकॉर्ड की बात है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी| हाल ही में माननीय

उच्चतम न्यायालय ने उमेश कुमार पाहवा के मामले में बनाम निदेशक मंडल उत्तराखंड ग्रामीण बैंक और अन्य (2022) 4 एससीसी 385 से संबंधित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सेवा से हटाने की सजा घटाकर को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में बदल दिया।

62. इस प्रकार विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, दंड की मात्रा को इस हद तक संशोधित किया गया है कि सेवा से हटाने के दंड को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में बदल दिया जाए। इस प्रकार याचिकाकर्ता उन सभी लाभों की हकदार होगी जो उसे सेवा से हटाने से लेकर अनिवार्य सेवानिवृत्ति तक की सजा में सुधार करके उपलब्ध हो सकते हैं| इस प्रकार वर्तमान याचिका को पूर्वोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है।

दिनेश कुमार शर्मा, न्यायमूर्ति

18 जनवरी ,2023/'पीपी'

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्द्मेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*